

श्री गुरुदक्षिणा/श्री गुरुपूजन



1-प्रस्तावना-

संघशाखा प्रारम्भ होने के बाद प्रारंभिक दो वर्षों तक तो धन की कोई आवश्यकता महसूस नहीं हुई। कार्यक्रम भी सामान्य और छोटे स्वरूप के होते थे, इसलिए खर्चा भी विशेष नहीं होता था। जो कुछ थोड़ा बहुत खर्च होता उसकी पूर्ति डॉक्टरजी का मित्र-परिवार करता। उनके मित्रों को यह पूरा विश्वास था कि डॉक्टरजी निरपेक्ष देश सेवा का कार्य कर रहे हैं। इसलिए वर्ष भर में एक या दो बार वे बड़ी खुशी से संघ कार्य के लिए आर्थिक मदद देते थे। 1927 तक संघ के जिम्मेदार स्वयंसेवक डॉक्टरजी के इन विश्वासपात्र मित्रों के यहां जाकर धन ले आते थे। द्रुत गति से बढ़ने वाले संघ कार्य के लिए, कार्यक्रमों तथा प्रवास हेतु जब अधिक खर्च करना अपरिहार्य हो गया तब डॉक्टरजी ने इस संबंध में स्वयंसेवकों के साथ विचार-विमर्श प्रारंभ किया। आज तक तो धनराशि एकत्रित होती उसका पाई-पाई का हिसाब डॉक्टरजी स्वयं रखते थे और यही आदत उन्होंने स्वयंसेवकों में भी डाली। परिणाम स्वरूप स्वयंसेवकों को अपने सारे कार्यक्रम सादगीपूर्ण ढंग से, कम खर्च में करने की आदत हो गई। शाखाएं तेजी से खुलने लगीं थी। नागपुर के पड़ोसी वर्धा और भंडारा जिलों में नयी शाखाएं खुलीं। इस कारण आवश्यक खर्च भी बढ़ने लगा। कुछ दिनों तक मित्रों से उधार लेने का क्रम चला। मित्र भी बड़ी आस्था से रकम उधार देते और वापसी की कोई जल्दबाजी नहीं की जाती, फिर भी उधार ली गई रकम आखिर कभी न कभी वापस करनी है- यह चिंता उन्हें

अवश्य होती। फिर इस तरह उधार लेकर काम करने का क्रम आखिर कब तक चलेगा, यह चिंता स्वयंसेवकों के मन में भी उत्पन्न होने लगी और इसका कोई निदान ढूंढा जाने लगा।

एक स्वयंसेवक ने कहा, संघ कार्य हिन्दूसमाज का कार्य है। इसलिए जो आर्थिक मदद दे सकते हैं, ऐसे संघ से सहानुभूति रखने वाले लोगों से धन एकत्रित किया जाए। अन्य स्वयंसेवक ने भी इस सुझाव का समर्थन करते हुए कहा कि समाज जीवन की उन्नति हेतु चलने वाले सभी प्रकार के कार्य आखिर लोगों द्वारा दिए गए दान, अनुदान और चंदे की रकम से ही चलते हैं- अतः हमें भी इसी तरीके से धन जुटाना चाहिए। एक और स्वयंसेवक ने इस पर आपत्ति उठाते हुए कहा कि हमारा कार्य सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय कार्य है इसका लोगों का बोध कराना होगा किंतु इसके लिए उनसे आर्थिक मदद मांगना उचित नहीं होगा। इसी बात को आगम बढ़ाते हुए अन्य स्वयंसेवक ने कहा कि यदि हम इसे अपना ही कार्य कहते हैं तो संघ जैसे उदात्त कार्य हेतु हम स्वयं ही अपना धन लगाकर खर्च की व्यवस्था क्यों न करें? डॉक्टरजी ने उसे अपना विचार अधिक स्पष्ट रूप से कहने का आग्रह किया। तब उस स्वयंसेवक ने कहा, अपने घर में कोई धार्मिक कार्य अथवा विवाह आदि कार्य होते हैं। कोई अपनी लड़की के विवाह के लिए चंदा एकत्रित कर धन नहीं जुटाता। इसी प्रकार संघ कार्य पर होने वाला खर्च भी, जैसे भी संभव हो, हम सभी मिलकर वहन करें।

स्वयंसेवक खुले मन से अपने विचार व्यक्त करने लगे। एक ने शंका आशंका उपस्थित काते हुए कहा, यह धन राशि संघ के कार्य हेतु एकत्र होगी- क्या इसे हम कार्य हेतु अपना आर्थिक सहयोग मानें? दान, अनुदान, चंदा आर्थिक सहयोग आदि में पूर्णतया निरपेक्ष भाव से देने का भाव प्रकट नहीं होता। अपनी घर-गृहस्थी ठीक तरह स चलाते हुए, हमें जो संभव होता है, वही हम दान, अनुदान चंदा आदि के रूप में देते हैं। किंतु हमारा संघ कार्य तो जीवन में सर्वश्रेष्ठ वरण करने योग्य कार्य है। वह अपना ही कार्य है, इसलिए हमें अपने व्यक्तिगत खर्चों में कटौती कर संघ कार्य हेतु जितना अधिक दे सकें, उतना हमें देना चाहिए- यह भावना स्वयंसेवकों में निर्माण होनी चाहिए। अपने व्यक्तिगत जीवन में भी धन-सम्पत्ति की ओर देखने का योग्य दृष्टिकोण हमें स्वीकार करना चाहिए। मुक्त चिंतन के चलते स्वयंसेवक अपने अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। डॉक्टरजी ने सबके विचारों को सुनने के बाद कहा, कृतज्ञता और निरपेक्षता की भावना से गुरुदक्षिणा समर्पण की पद्धति भारत में प्राचीनकाल में प्रचलित थी। संघ कार्य करते समय धन संबंधी हमें अपेक्षित भावना गुरुदक्षिणा की इस संकल्पना में प्रकट होती है- हमें भी वही पद्धति स्वीकार करनी चाहिए। डॉक्टरजी के इस कथन से सभी स्वयंसेवकों के विचार को एक नयी दिशा मिली और विशुद्ध भावना से 'गुरुदक्षिणा' समर्पण का विचार सभी स्वयंसेवकों के हृदय में बस गया।

दो दिन बाद ही व्यास पूर्णिमा थी। गुरुपूजन और गुरुदक्षिणा समर्पण हेतु परम्परा से चला आ रहा, यह पावन दिवस सर्व दृष्टि से उचित था। इसलिए डॉक्टरजी ने कहा कि इस दिन सुबह ही स्नान आदि विधि पूर्णकर हम सारे स्वयंसेवक एकत्रित आयेंगे और श्री गुरुपूर्णिमा व श्री गुरुदक्षिणा का उत्सव मनायेंगे। डॉक्टरजी की यह सूचना सुनते ही घर लौटते समय स्वयंसेवकों के मन में विचार-चक्र घूमने लगा। परसों हम गुरु के नाते किसकी पूजा करेंगे? स्वयंसेवकों का गुरु कौन होगा? स्वाभाविकतया सबके मन में यह विचार आया कि डॉक्टरजी के सिवा हमारा गुरु कौन हो सकता है? हम परसों मनाये जाने वाले गुरुपूजन उत्सव में उन्हीं का पूजन करेंगे। कुछ स्वयंसेवकों के विचार में, राष्ट्रगुरु तो समर्थ रामदास स्वामी हैं। प्रार्थना के बाद नित्य हम उनकी जय जयकार करते हैं। अतः समर्थ रामदासजी के छायाचित्र की पूजा करना उचित रहेगा। उन्हीं दिनों अण्णा सोहनी नामक एक कार्यकर्ता शाखा में उत्तम शारीरिक शिक्षके रूप में प्रसिद्ध थे- उनकी शिक्षा से हमारी शारीरिक क्षमता और विश्वास से वृद्धि होती है, अतः क्यों न उन्हें ही गुरु के रूप में पूजा जाए? अनेक प्रकार की विचार तरंगे स्वयंसेवकों के मन में उटने लगीं।

व्यास पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल सभी स्वयंसेवक निर्धारित समय पर डॉक्टरजी के घर एकत्रित हुए। ध्वजारोहण, ध्वजप्रणाम के बाद स्वयंसेवक अपने अपने स्थान पर बैठ गए। व्यक्तिगत गीत हुआ और उसके बाद डॉक्टरजी भाषण देने के लिए उठ खड़े हुए। अपने भाषण में उन्होंने कहा कि संघ किसी भी जीवित व्यक्ति को गुरु न मानते हुए अपने परम पवित्र भगवा ध्वज को ही अपना गुरु मानता है। व्यक्ति चाहे तिना ही श्रेष्ठ क्यों न हो, वह सदा अविचल-अडिग उसी स्थिति में रहेगा- इसकी कोई गारंटी नहीं। श्रेष्ठ व्यक्ति में भी कोई न कोई अपूर्णता या कमी रह सकती है। सिद्धांत ही नित्य अडिग बना रह सकता है। भगवा ध्वज ही संघ के सैद्धान्तिक विचारों का प्रतीक है- इस ध्वज की ओर देखते ही अपने राष्ट्र का उज्ज्वल इतिहास, अपनी श्रेष्ठ संस्कृति और दिव्य दर्शन हमारी आंखों के सामने खड़ हो जाता है। जिस ध्वज की ओर देखते ही अंतःकरण में स्फूर्ति का संचार होने लगता है वही भगवा ध्वज अपने संघ कार्य के सिद्धांतों का प्रतीक है- इसलिए वह हमारा गुरु है।

आज हम उसी का पूजन करें और उसे ही अपनी गुरुदक्षिणा समर्पित करें।

कार्यक्रम बड़े उत्साह से सम्पन्न हुआ और इसके साथ ही भगवा ध्वज को अपना गुरु और आदर्श मानने की पद्धति शुरू हुई। इस प्रथम गुरुपूजा उत्सव में कुल 84 रु. श्रीगुरुदक्षिणा के रूप में एकत्रित हुए। उसका तथा आगे संघ कार्य पर होने वाले खर्च का पूरा हिसाब रखने की व्यवस्था की गई। श्रीगुरुदक्षिणा का उपयोग केवल संघ कार्य हेतु ही हो, अपने व्यक्तिगत कार्य के लिए उसमें से एक भी पैसा उपयोग में नहीं लाया जाए- इसकी चिंता स्वयं

डॉक्टरजी किया करते। वही आदत स्वयंसेवकों में भी निर्माण हुई इस प्रकार आत्मनिर्भर होकर संघ कार्य करने की पद्धति संघ में प्रचलित हुई।

2-हमारा आदर्श

भगवा ध्वज ही हमारा गुरु है और वही संघ के विचारों का प्रतीक होने से हमारा आदर्श भी है। यह विचार बुद्धि और भावना से ग्रहण के बाद भी स्वयंसेवकों को अपने व्यावहारिक जीवन में एक कठिनाई बची रहती। जिनकी ओर देखकर उनके जैसा अपना भी जीवन बने, ऐसे किसी महान पुरुष के जीवन का अध्ययन कर, अपने जीवन में मार्गदर्शन प्राप्त करना आसान होता है। ऐसे किसी आदर्श महान व्यक्ति के जीवन का अनुसरण करना उसके लिए आसान होता है। केवल सिद्धांतों का चिंतन कर अथवा उसके प्रकट स्वरूप भगवा ध्वज के बारे में विचार कर अपने जीवन का व्यवहार सुनिश्चित करना तो बड़ा कठिन कार्य है।

अनेक स्वयंसेवकों के मन में उठते इस प्रश्न की जानकारी डॉक्टरजी को मिली।

शाखा में भिन्न-भिन्न प्रकार के- दंड, खड्ग, शूल, खेल, योग जैसे साहस और आत्मविश्वास बढ़ाने वाले कार्यक्रम हुआ करते। अनुशासन का संस्कार दृढ़ करने के लिए गणवेश पहिनकर समता, संचलन आदि कार्यक्रम करने की पद्धति थी। जैसे-जैसे कार्य बढ़ने लगा- संघ शाखाओं की संख्या भी बढ़ने लगी। अनेक उपशाखाएं भी प्रारंभ हुईं।

व्यवस्था की दृष्टि से प्रत्येक उपशाखा में कार्यवाह व मुख्यशिक्षक की योजना की जाती। ऐसे कुछ कार्यकर्ता कर्तृत्ववान और अच्छे स्वयंसेवक ऐसे सद्गुणी कार्यकर्ता की ओर आसानी से आकर्षित होते थे। यही कार्यकर्ता अधिकारी हमारे लिए आदर्श हैं, ऐसी सुप्त भावना उनके मन में भी उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं था, किंतु क्या यह उचित है? यह प्रश्न कुछ स्वयंसेवकों के मन में उठा। स्वयंसेवकों से नित्य निकट सम्पर्क होने के कारण डॉक्टरजी को भी इसकी भनक मिली। अनौपचारिक वार्तालाप में यह विचार प्रकट होने लगा।

यह बात स्वीकार करते हुए भी कि अपना यह स्वर्णगैरिक भगवा ध्वज ही हमारा गुरु और आदर्श है, यदि कोई जीवित गुणसम्पन्न, कर्तृत्ववान व्यक्ति आदर्श के रूप में सामने होतो क्या किशोर व छात्र स्वयंसेवकों को उसके अनुसार अपना जीवन बनाना आसान नहीं होगा फिर यह भी मान लिया तो ऐसा आदर्श कार्यकर्ता कैसे खोजा जाए? यह प्रश्न बाकी रह जाता है। पूर्णतया निर्दोष तो संभवतया कोई नहीं होगा। किसी उत्तम स्वयंसेवक के केवल

सद्गुणों के आधार पर ही उसे आदर्श मानना क्या ठीक रहेगा? यदि इस ढंग से सोचा गया तो शायद प्रत्येक स्वयंसेवक को अपना अलग आदर्श स्वीकार करना होगा। किसी स्वयंसेवक द्वारा स्वीकृत आदर्श दूसरे स्वयंसेवक द्वारा नकारे जाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। बजरंग बली हनुमान आदर्श स्वयंसेवक हैं। शाखा में प्रार्थना करते समय अपने जीवन में शील आदि गुणों का विकास हो, इस हेतु हम हनुमानजी से ही विनती करते हैं। इस प्रकार डॉक्टरजी के साथ अनौपचारिक वार्तालापों में स्वयंसेवक अपने मन में उठने वाले प्रश्न और विचार प्रकट करते थे। सभी स्वयंसेवकों के लिए एक ही व्यक्ति आदर्श रहे, यह मानते हुए भी ऐसा व्यक्ति कौन हो सकता है, इसका निर्णय नहीं हो पा रहा था। एक स्वयंसेवक ने कहा पू. डॉक्टर हेडगेवार ही हमारे आदर्श हैं। स्वयं के नाम का इस प्रकार भाव पूर्ण शब्दों में उल्लेख होते ही डॉक्टरजी ने कहा, बस, बहुत चर्चा हो चुकी- हमें इस सम्बन्ध में आगे और भी चिंतन करना होगा- उसे हम आराम से करेंगे- जल्दी किस बात ही है?

दूसरे दिन पुनः इस विचार को गति देने के लिए डॉक्टरजी ने कहा कोई भी जीवित व्यक्ति आज कितना ही सद्गुण सम्पन्न और कर्तृत्ववान क्यों न हो, उसका जीवन अभी पूर्ण नहीं हुआ है। मानलो, यदि ऐसे व्यक्ति के जीवन में आगे चलकर कोई विकृति उत्पन्न हो जाए, उस व्यक्ति के बारे में आज तक अज्ञात किसी अवगुण या दोष का पता चले तो उस कार्यकर्ता को आदर्श मानने वाले स्वयंसेवक की भावनाओं को कितना आघात पहुंचेगा और तब संघ पर से भी उसका विश्वास ढहने लगेगा। व्यक्ति को स्थूलनशील माना गया है। इसलिए किसी भी व्यक्ति को अपना आदर्श मानना उचित नहीं होगा। हनुमानजी, श्रीरामचंद्र, श्रीकृष्ण तो सदैव हमारे आदर्श हैं- वे भी इसलिए कि उन्होंने अपने जीवन में अद्भुत काय किये- वे तो साक्षात् ईश्वर के अवतार हैं- उनके लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं था। मनुष्य के रूप में 'मानव-लीला' करने के लिए ही परमेश्वर ने उनके रूप में जन्म लिया था। वैसा जीवन बनाने की कल्पना भी नहीं की सकती, क्योंकि हम उन्हें परमेश्वर-स्वरूप ही मानते हैं। अपने जीवन में उनका आदर्श कैसे स्वीकार किया जाए यह विचार अपने मन में उठता है। इसलिए अपने निकट भूतकाल में हुए किसी श्रेष्ठ व्यक्ति का अदर्श के रूप में हमें विचार करना चाहिए। ऐसे महान व्यक्ति का पूर्ण विकसित जीवन-पुण्य अपने परिचय का होने के कारण वह जीवन हमारे सामने आदर्श के रूप में रह सकता है। ऐसे ऐतिहासिक श्रेष्ठ पुरुष का विचार करते समय हमें सहज ही छत्रपति शिवाजी महाराज का स्मरण हो आता है। उनके जीवन का प्रत्येक व्यवहार हमारे लिए आदर्श है। इस कारण हरेक स्वयंसेवक को छत्रपति शिवाजी महाराज का आदर्श ही अपने सामने रखना चाहिए।

समर्थ रामदास स्वामी ने संभाजी के नाम प्रेषित पत्र में उन्हें अपने पिता स्वरूप जीवन जीने का परामर्श दिया जिन शब्दों में समर्थ रामदास स्वामी ने छत्रपति शिवाजी के प्रति अपनी भावनाएं प्रकट कीं, उनसे हम सभी परिचित हैं। वे शब्द इस प्रकार के थे-

"शिवरायाचे कैसे बोलणे।

शिवरायाचे कैसे चालणे।

शिवरायाची सलगी देणे। कैसे असे॥

शिवरायाचा कैसा प्रताप।

शिवरायाचा कैसा साक्षेप।

....शिवरायास आठवावे।

जीवित तृणवत मानावे॥

डॉक्टरजी के उक्त कथन से स्वयंसेवकों का पूर्ण समाधान हुआ। इस सामूहिक चिंतन से हमारे मन में एक विचार उठता है। पू. डॉक्टरजी ने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण संघ कार्य में लगाया। अन्य किसी बात का, अपने व्यक्तिगत जीवन के बारे में कभी कोई विचार नहीं किया। 1925 के पूर्व केवल समाज कार्य की ही विचार किया और 1925 के बाद केवल संघ कार्य की चिंता में ही वे मग्न रहे। स्वयंसेवकों की दृष्टि में तो प्रारंभ से ही मर्यादा पुरुषोत्तम स्वयंसेवक तथा अपने आदर्श रहे हैं। किन्तु इसके बावजूद, ऐसा दिखाई देता है कि अपने जीतेजी इस बारे में निरंतर सतर्क रहते कि कोई स्वयंसेवक उन्हें आदर्श मानने का विचार कभी भी न करे।

आज अनेक सार्वजनिक कार्य किसी व्यक्ति के नाम पर चलते हुए हम देखते हैं। ऐसे कार्य कुछ काल तक चलते हैं। ऐसे व्यक्ति- केन्द्रित कार्य, उस व्यक्ति के निधन होते ही बंदा हो जाते हैं, या प्रभावहीन हो जाते हैं। इसलिए प्रारंभ से ही डॉक्टरजी ने इस बात की चिंता की कि कोई भी जीवित व्यक्ति संघ कार्य का केन्द्र बिन्दु न बनने पाये, जिनका जीवन पूर्णतया विकसित हो चुका है, ऐसा ही व्यक्ति जिसके जीवन के सभी पहलुओं से हम परिचित हैं, ऐसा महान व्यक्ति ही हमारा सच्चा आदर्श है। जीवन की यह व्यवहार्य-दृष्टि स्वयंसेवकों के हृदय में स्थिर हो सके, इसका उन्होंने कितनी दूरदृष्टि से विचार किया था, यह जानकर आज भी हम सभी आश्चर्य चकित रह जाते हैं।

3-संघ कार्य का आधार

जब संघ का कार्य बढ़ने लगा तब एक दिन स्वयंसेवकों को विचार-प्रवण करने के लिए डाफक्टरजी ने उनके सामने अपने मन के भाव प्रकट करते हुए कहा, अपनी शाखा-उपशाखाओं की संख्या बढ़ रही है। अपने कार्यकर्ताओं के प्रयत्न से यथा सूय सारे भारत में अपनी शाखां हो जायेंगी। ऐसे भारतव्यापी संघ कार्य का मूल आधार भी काफी मजबूत होना चाहिए। यह आधार केन्द्रीभूत और अडिग होना चाहिए। अपने इस संघ कार्य का ऐसा केन्द्रीभूत आधार स्तम्भ क्या होगा? स्वयंसेवकों के लिए यह प्रश्न कुछ अनपेक्षित सा था। फिर भी डॉक्टरजी का आग्रह था कि इस सम्बन्ध में हर स्वयंसेवक अपने अपने विचार प्रकट करे। इस स्थिति में, हरेक स्वयंसेवक अपने तर्कों विचार कर योग्य शब्दों में अपना मत प्रकट करने लगे। इस प्रकार डॉक्टरजी ने स्वयंसेवकों को अपने कार्य के सम्बन्ध में स्वयं विचार हेतु प्रेरित किया।

एक स्वयंसेवक ने कहा, भारतमाता की श्रद्धा ही अपने कार्य का आधार है। इसलिए अपन नित्य की प्रार्थना हम मातृभूमि की वंदना कर उसके चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित करने का निश्चय प्रकट करते हैं। स्वयंसेवकों के हृदय में अपनी जन्मभूमि के प्रति भक्ति को जागृत और प्रखर बनाना ही हमारा कार्य है। एक अन्य स्वयंसेवक ने कहा, अपनी उदात्ता हिंदू संस्कृति की रक्षा के लिए कटिबद्ध रहना हमारा राष्ट्रीय कार्य है और इस कार्य के प्रतीक के रूप में, जिसे हमने अपने गुरुस्थान पर माना है, यह भगवा ध्वज ही हमारे कार्य का अडिग-अचल आधार है। तीसरे स्वयंसेवक ने कहा, भारतमाता की भक्ति के अलावा अन्य कोई मूलभूत शाश्वत विचार प्रकट करना वाला आधार होना चाहिए। भारत की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पर आक्रमण करने वाले हमारे शत्रु अन्य धर्मीय हैं- उस आक्रमण से भारत को मुक्त कर सच्चे अर्थों में स्वतंत्र बनाना ही हमारा वास्तविक कार्य है। इसलिए स्वतंत्रता-प्राप्ति ही हमारे कार्य का मूलभूत विचार है। भगवा ध्वज तो अनेक मठों-मंदिरों पर भी फड़कता है। रामकृष्ण मठ और मिशन के कार्य में भी संन्यास वृत्ति को प्रमुखता होने के कारण उनके अंतःकरणों में भी भगवे रंग के प्रति श्रद्धा हैं इसलिए अपने संघ कार्य की विशेषता के रूप में हमें अपने संगठन का कोई अन्य केन्द्रीभूत आधार ढूँढना होगा। संघ कार्य का मूलभूत विचार और अपनी आकांक्षा को प्रकट करना वाली हमारी प्रार्थना है, अतः संघ की प्रार्थना ही कार्य का प्रमुख आधार केन्द्र होना चाहिए। हिन्दु राष्ट्र को परम् वैभव के शिखर पर ले जाने का हमारा दृढ़ निश्चय है- वही हमारा वैचारिक अधिष्ठान है। किसी ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा, ये सारे आधार तो प्रतीकात्मक हैं अथवा वैचारिक स्वरूप

के हैं। प्रत्येक स्वयंसेवक जिसे आसानी से और अच्छे ढंग से अनुभव कर सके, ऐसा हमारा मूल आधार होना चाहिए। इससे स्वयंसेवकों के विचारों को एक नयी दिशा मिली। उस समय बैठक में उपस्थित एक ज्येष्ठ अधिकारी ने कहा कि डॉक्टर हेडगेवार ही हमारे अखिल भारतीय कार्य के केन्द्रीय व अचल आधार स्तम्भ हैं। जब इस प्रकार डॉक्टरजी का नाम का उल्लेख हुआ तो डॉक्टरजी ने वहीं बैठक को समाप्त करने के इरादे से शाखा संबंधी अन्य मामूली मुद्दों के बारे में पूछताछ कर बैठक समाप्ति की घोषणा की।

दूसरे दिन, डॉक्टरजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि अपना यह कार्य श्रेष्ठ ईश्वरीय है। कोई भी व्यक्ति कार्य का आधार नहीं हो सकता। व्यक्ति कितना ही गुणी क्यों न हो, अपने हिंदू समाज का अडिग-अचल आधार नहीं हो सकता। प्रत्येक स्वयंसेवक को नित्य अनुभव में आने वाली हमारी शाखा है। दैनंदिन चलने वाली उत्तम, कार्य प्रवण संघ शाखा ही हमारे कार्य का आधार है। पहले संघ की शाखा नागपुर में शुरू हुई इसलिए नागपुर की शाखा ही व्यापक संघ कार्य का आधार है। नागपुर की शाखा जितनी सुदृढ़, जितनी अधिक संस्कारक्षम व मजबूत रहेगी। उतना ही हमारा अखिल भारतीय कार्य का आधार भी मजबूत रहेगा। हमें नागपुर की केन्द्रशाखा को उत्कृष्ट बनाने के लिए अपनी सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करना चाहिए। समाज को नित्य दिखाई देने वाला संघ कार्य का यह प्रकट स्वरूप है। संघ शाखा को देखकर ही समाज संघ कार्य का मूल्यांकन करेगा। अतः शाखा के रूप में अपने दैनंदिन संघ स्थान पर होने वाले कार्यक्रम और कार्य ही अपने संघ का आधार हैं।

अच्छे ढंग से चलने वाली शाखा कैसी हो, इस बारे में भी स्वयंसेवकों के साथ अनौपचारिक वार्तालापों में विषय स्पष्ट होता गया। नित्य समय पर लगने वाली, जिसमें स्वयंसेवकों के बीच परस्पर आत्मीयता के संबंध हों, एक दूसरे के सुख-दुःखों में समरस होने की भावना हो, हिन्दु समाज के सभी स्तर के लोगों से निकट सम्पर्क बनाकर उन्हें शाखा में लाने का उपक्रम हो, शाखा के कार्यक्रमों में, स्वयंसेवकों के जीवन में अनुशासन परिलक्षित हो- इत्यादि विशेषताएं उत्तम शाखा के सन्दर्भ में प्रकट की गईं। ऐसी उत्तम शाखा खड़ी करने के दिशा में प्रयास भी आरंभ हुए।

4-गुरु—पूजा

हिंदू-समाज के अंतर्गत भिन्न-भिन्न धार्मिक पंथ, मत अथवा संप्रदाय के अनुगामी लोग अपने पंथ अथवा संप्रदाय के किसी श्रेष्ठ पुरुष को गुरु मानकर उसकी आज पूजा करते हैं। वे अपने पंथ के परंपरागत गुरु को, जो एक जीवित व्यक्ति होता है, अपना आदर्श समझकर उस आदर्श के अनुसार स्वतः को बनाने हेतु उसकी पूजा करते हैं। पर आप को पता है, गुरु-पूजा के विषय में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दृष्टिकोण अपने ढंग का है। संघ किसी जीवित अथवा मृत व्यक्ति को परिपूर्ण आदर्श के रूप में न देखता है और न मानता है। इस विषय में संघ की धारणा एकदम निराली है। हमारे धर्म में बतलाया गया है कि गुरु और परमात्मा के प्रति एक सी ही श्रद्धा रखनी चाहिए। 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।'

गुरु और परमात्मा की महत्ता एक सी ही बतलाई गई है। परंतु वास्तव में विचारणीय प्रश्न है कि क्या कोई ऐसा जोव इस सृष्टि में है, जिसकी तुलना उस सृजनहार परमात्मा के साथ हा सके? क्या कोई ऐसा मृत अथवा जीवित व्यक्ति हम खोज कर निकाल सकते हैं? हर पहलू से उसका सोच-विचार करने के बाद खुली आँखों से अपने गुरु का निश्चय करना उचित और आवश्यक है, अन्यथा बुरी तरह पछताना पड़ता है। गुरु वही है, जो हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शक, हमारे उद्देश्य व आदर्श की साक्षात् मूर्ति तथा हमारे कार्य का साकार स्वरूप हो। गुरु कैसा होना चाहिए, गुरु किसे मानना चाहिए इत्यादि का वर्णन

हमारे महान शास्त्रकारों ने किया है। इन सब शास्त्रकारों द्वारा वर्णित गुरु के लिए आवश्यक सद्गुण किसी एक व्यक्ति में पा सकना असंभव—सा है।

गुरुत्व की इस कसौटी पर कसकर ही संघ ने परम पवित्र भगवा ध्वज को, जो हमारे हिंदू—राष्ट्र के प्राचीन गौरव, सभ्यता और इतिहास—परंपरा का प्रतीक—स्वरूप है, अपना गुरु माना है।

5-संघ में व्यक्तिपूजा नहीं

जब तक फूल पूर्ण विकसित नहीं होता, तब तक कौन कह सकता है कि वह सर्वोत्तम फूल है? उसके सर्वोत्तम होने का दावा करने में खतरा है। मनुष्य का जीवन फूल के समान है। इस जीवन—पुष्प का संपूर्ण विकास होने देना चाहिए। उसमें किसी प्रकार का कीड़ा नहीं लगना चाहिए, वह पूर्णरूप से प्रस्फुटित होना चाहिए। उसके जीवन की एक—एक पंखुड़ी खिलने देना चाहिए। किसी की कोई पंखुड़ी यदि कहीं चिपक गई हो तो वह समझ में नहीं आएगा। इसलिए उसे विलग होने देना चाहिए। इस प्रकार चिपकी हुई अनेक पंखुड़ियां अलग—अलग होकर जीवन—पुष्प पूर्ण रूप से खिला हुआ है, ऐसा जब तक नहीं मालूम होता, तब तक किसी व्यक्ति का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए। किसी मनुष्य के सम्बन्ध में अपने मन में इष्ट—अनिष्ट भावनाएँ रहती हैं। उसका परिणाम भी हम पर हाता रहता है। इसलिए आवश्यक समय व्यतीत होना जरूरी होता है। उस व्यक्ति का मूल्यांकन आनेवाली पीढ़ियों का करने दीजिए। इसलिए गुरुस्थान पर किसी भी व्यक्ति को मान लेने पर पश्चाताप का प्रसंग आ सकता है।

अधूरी अवस्था के व्यक्ति को आदर्श मानने के बाद मान लो, वह व्यक्ति अपने आदर्शों, उद्देश्यों और सिद्धांतों से किसी कारणवश हट जाए अथवा गलत रास्ते से जाने लगे, तब इस दुर्घटना की गलत प्रतिक्रिया उसके अनुयायियों के मन में पैदा होगी और उनके मन में समस्त संसार के विषय में घोर निराशा और द्वेष के भाव भड़क उठेंगे। कुल मिलाकर परिणाम अत्यंत आत्मघाती होता है। इस प्रकार का अनर्थ संघ में पैदा न हो, इसलिए परम पूजनीय डाक्टर जी ने शुरु से हमें व्यक्तिपूजा के पाठ कभी नहीं सिखाए।

हमारे इस पवित्र ध्वज में अपनी पूर्व-परंपरा को प्रकट करने की जो शक्ति है, उसको नष्ट करने के लिए न काल समर्थ है और न यमदंड।

इस प्रकार के चिरंजीवी उदीयमान बालसूर्य का तेज धारण करनेवाले, प्राची के मुख की अरुण-ज्योति के समान इस पवित्र, त्यागमय ध्वज को हमने अपना गुरु माना है। इसपर हमें गौरव है। पर आखिर मनुष्य के मन की प्राकृतिक दुर्बलता को हमें भुलाना नहीं चाहिए। अव्यक्त, अमूर्त, निराकार वस्तु का पूर्णरूपेण ज्ञान होना मनुष्य की बुद्धि के ही नहीं, मन की भी शक्ति के बाहर है।

वह चाहता है कि अव्यक्त, अमूर्त की कोई व्यक्त, मूर्त, चैतन्यमय, चलती-फिरती-बोलती मूर्ति हमेशा उसकी आँखों के सामने रहे। मनुष्य का मन हमेशा इस प्रकार के सीमित, साकार, व्यक्त रूप की खोज में व्यस्त रहता है। इसीलिए हमारे धर्म में मूर्तिपूजा, अवतार-कल्पना, नाम, भक्ति-स्तोत्रदआदि द्वारा निर्गुण, निराकार, अव्यक्त परमेश्वर को व्यक्त स्वरूप देकर सगुणोपासना को मोक्षप्राप्ति का एक मार्ग बतलाया है।

6-गुरु किसे मानना चाहिए?

किसी व्यक्ति विशेष के कुछ गुणों का अवलाकन करने पर व्यक्ति के संबंध में मन में आदर की भावना निर्माण होती है, किंतु कभी-कभी कुछ काल बीतने पर वह सम्मान की भावना यथापूर्व नहीं रह पाती।

जैसे-जैसे उस व्यक्ति के अन्य गुणावगुणों का परिचय होने लगता है, वैसे-वैसे उस व्यक्ति के संबंध का आदर नष्ट होता जाता है। इतना ही नहीं उस व्यक्ति के बारे में मन में तिरस्कार की भावना निर्माण होती है।

मनुष्य सदैव भिन्न-भिन्न प्रकार की परिस्थितियों से घिरा रहता है। उसे सुख-दुखों के अनेक प्रसंगों में से जाना पड़ता है। उस समय हर बार उन परिस्थितियों के ऊपर घात करते हुए सब प्रकार के संकटों के सिर पर पैर रखकर उन्हें नष्ट कर जोवन उच्च स्तर पर रखने की योग्यता उसमें नहीं रहती। इस प्रकार की पात्रता उसमें है, ऐसा जो कोई कहता है, उसके अधःपतन का प्रारंभ हो गया, ऐसा समझना चाहिए।

विश्वामित्र ऋषि का उदाहरण ऐसा ही है। उनकी तपस्या उग्र थी।

गायत्री मंत्र का द्रष्टा यह महान व्यक्ति अपने तपोमार्ग से च्युत हुआ। स्वतः के ध्येय से वह च्युत हो गया। पश्चाताप करने की नौबत आ गई। इस प्रकार के उदाहरण ध्यान में रखकर इस प्रकार का गर्व किसी को नहीं करना चाहिए। मैंने सब प्रकार की अनिष्ट परिस्थितियों को पराजित किया है, मुझमें कोई कमी नहीं है, उत्पन्न भी नहीं होगी, इस प्रकार का अभिमान अर्थहीन सिद्ध

होने में देर नहीं लगती। अत्यधिक गुणवान, अत्यंत श्रेष्ठ और पवित्र होने पर भी व्यक्ति का अधःपतन हो सकता है।

7-प्राचीन प्रेरणास्थान

यदि व्यक्ति नहीं तो कोई प्रतीक चिह्न अथवा वस्तु क्या हो सकती है? राष्ट्रीय जीवन के पुनर्निर्माण का संकल्प कर उसके लिए श्रेष्ठ गुणों का संचय करने की स्फूर्ति देनेवाला, अनेक व्यक्तियों से संबंध स्थापित कर उनको इस संगठन-सूत्र में गूँथन की शक्ति उत्पन्न करनेवाला, जिसके लिए हम जीते हैं, मरते हैं, जो अपना जीवित कार्य है, उसक लिए सदैव प्रेरणा देनेवाला, अतः वंदनीय ऐसा प्रतीक कौन सा हो सकता है, जिसे हम गुरु के स्वरूप में स्वीकार करें? अति प्राचीनकाल से अपने इस राष्ट्र में जो जीवनधारा सतत चली आई है, उसमें यज्ञ को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। यज्ञ-कर्म के पीछे जो तत्त्व है, उसका अवलोकन करें। यज्ञ अग्निप्रधान है। अतः उस अग्नि का प्रतीक, जो उसकी ज्वाला है, उस ज्वाला के रंग के प्रतीक इस ध्वज को हम लोगों ने गुरु-रूप में स्वीकार किया है।

हमारे सांस्कृतिक जीवन पद्धति में अंधविश्वास के लिए कोई स्थान नहीं है। हम लोग ज्ञान के उपासक हैं। हरेक बात का सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परीक्षण करने की हमारी परंपरा है। अपने यहाँ ऐसा कोई नहीं कहता कि मैं कहता हूँ, इसलिए परमेश्वर को स्वीकार करो। अपने यहाँ तो ज्ञान से उसे जानने का मार्ग बताया गया है। इस दृष्टि से हमारे पूर्वजों ने, श्रेष्ठ दर्शनकारों ने कष्टमय तपस्या कर ऐसा प्रयत्न किया कि ज्ञान-सूर्य का उदय हो।

हमारे नित्य के जीवन में उसका भली-भाँति दर्शन होता है।

रात-भर अंधेरा रहता है। प्रकाशमान सूर्य उसे नष्ट करता है।

प्रातःकाल वह अपने सात घोड़ेवाले रथ पर लहरानेवाला

उषाकालीन विजय-ध्वज लेकर आता है और सारा अंधेरा नष्ट करता है। वह ध्वज स्वच्छ आकाश में प्रभात में देखा जाए तो हल्के लाल रंग का दिखाई देता है।

उसमें सुवर्ण के रंग की छटा रहती है। वही है भगवान की

प्रकाशवान ज्ञान की ध्वजा। वही ध्वजा हम लोगों ने अपनी

राष्ट्रीय विशिष्टताओं के आविष्कार अथवा प्रतीक रूप में मानी है।

‘भगवद्ध्वज’ का अपभ्रंश होकर ‘भगवा ध्वज’ कहा जाता है।

राष्ट्र का प्रत्यक्ष रूप प्रकट करनेवाला, यज्ञ ज्वाला का प्रतीक,

प्रकाशमान सूर्य का यह ध्वज जीवन में अंधेरे को दूर कर प्रकाश देनेवाला है। इसे ही हमने अपना गुरु माना है।

8-राष्ट्र के उपस्थित देवता को जानें

अपना ध्वज यही अपने राष्ट्र का उपास्य दैवत है। प्राचीनतम,

तेजस्वी देदीप्यमान जीवन का मूर्तिमंत प्रतीक, आत्मसम्मान की

ज्योति जलानेवाला तथा अंतःकरण में विशुद्ध भावनाओं का झरना उत्पन्न करनेवाला है।

भिन्न-भिन्न धर्मों में मृत्यु के संबंध में भिन्न-भिन्न रंगों को महत्त्व

प्राप्त हो चुका है। कोई काला रंग अच्छा समझता है, किसी को

श्वेत रंग अच्छा लगता है। बौद्धधर्मी लोग पीला रंग पसन्द करते

हैं तो हिंदू लोगों को गेरुए रंग का आकर्षण है। व्यक्ति मृत्यु के

बाद दुबारा जन्म लेता है, यह कल्पना केवल भारतीयों में है।

अन्य धर्मों को आत्मा की अमरता ज्ञात न होने के कारण उनमें

अन्य रंग प्रचलित हो गए हैं।

मृत्यु के बाद मानव शरीर पीला अथवा सफेद पड़ जाता है। इससे उन लोगों ने सफेद, पीला आदि रंग स्वीकृत किए होंगे। भारतीयों के लिए चारों आश्रम में सबसे श्रेष्ठ संन्यास आश्रम है। इसमें संपूर्ण व्यक्तिगत जीवन का हवन करके व्यक्ति समष्टि जीवन का प्रारंभ करता है। इसलिए वह गेरुए रंग का वस्त्र पहनता है। उसकी इस वृत्ति के कारण वह सर्वत्र वंदनीय होता है। इस प्रकार सर्वसंगपरित्याग किए हुए व्यक्ति के वस्त्र के रंग के समान यह अपना ध्वज है।

9-इतिहास का साक्षी

अतः श्रद्धा के श्रेष्ठतम केंद्र और सब शक्तियों को चुनौती देनेवाले इस ध्वज को ही हम अपने हृदय में उच्चतम स्थान देंगे, इसके सामने नतमस्तक होंगे और इसी को जीवन समर्पित करेंगे, यह धारणा लेकर हम लोगों ने इस पवित्र पताका को अपना गुरु माना है। इसे सामने रखने पर अति प्राचीनकाल से आज तक के अपने राष्ट्र के सभी भव्य कार्य, संपादित समस्त पराक्रम और तेजस्विता आँखों के समक्ष प्रकट होती है। जगद्गुरु का स्थान प्राप्त करने के लिए आवश्यक सभी गुणों के समुच्चय इस एक पताका के दर्शन मात्र से अपने अंतःकरण में श्रद्धा का भाव जागृत होता है। यह तो हमारे राष्ट्र—पुरुष, अर्थात् प्रकट परमात्मा के नाते हमारे सामने है। जीवन को यज्ञरूप मानकर उसकी यज्ञ ज्वाला में स्वयं को होम करने के लिए यह हमें प्रोत्साहित करता है, मार्गदर्शन करता है, प्रेरणा देता है।

10-शिवो भूत्वा शिवम् यजेत्

जिसे अपना गुरु माना है, जिसकी नित्य पूजा करनी चाहिए, उसके गुणों को अपने में लाना चाहिए। उसके बिना कर्तव्य-पूर्ति नहीं हो सकती।

जो अपने गुरु के साथ अधिक से अधिक एकात्म और एकरूप होता है, वही उसका सच्चा साधक होता है। अपने यहाँ ऐसा कहा गया है कि पूजा करते-करते स्वयं ईश्वर बनना चाहिए। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, जहाँ कहीं भी हम रहें, अंतःकरण में तीव्र ज्वाला लेकर ऐसा आदर्श जीवन प्रकट करें कि प्रत्येक मुँह में हमारा ही नाम रहे। उस क्षेत्र में अपने जीवन का एक आदर्श उपस्थित करें। केवल गंध, अक्षत, फूल चढ़ाकर पूजा करना पर्याप्त नहीं, उसमें सर्वसमर्पण की भावना होनी चाहिए। पूजा करके धन रूप से दक्षिणा अर्पण करना, उस समर्पण भावना का दृश्य स्वरूप है। स्वार्थ के लिए उपयुक्त तथा संसार की सारी उपभोग्य वस्तुएँ जिसके द्वारा प्राप्त होती हैं, वह वस्तु है धन। उसका समर्पण गुरु को किया जाए तो सर्वसमर्पण की भावना को स्पष्ट करनेवाला वह एक प्रतीक हाता है। इसलिए राष्ट्र-जीवन के लिए सर्वसमर्पण करने की भावना निमाण करने के लिए इसका उपयोग होता है। सहजता से पैसा ध्वज के सामने रखना समर्पण नहीं है। उसके पीछे तुच्छता की भावना नहीं होनी चाहिए तथा किसी के अनुरोध पर भी यह कार्य नहीं होना चाहिए। स्वयं को धन के अभाव का कष्ट अनुभव होकर श्रद्धा से गुरु को धन देना चाहिए। संघ ने इसी पद्धति को अपनाया है।

गुरुदक्षिणा, याने निश्चित धनराशि देने का आग्रह अथवा नियमित रूप से इकट्ठा किया जानेवाला चंदा नहीं है। यह कार्य केवल स्वेच्छा का है। जीवन कष्टमय हो गया है, कुटुंब का भरणपोषण ठीक से नहीं हो पाता अथवा मैंने कम धन दिया तो लाग क्या कहेंगे, इस कारण यह पूजन टालना नहीं चाहिए। यहाँ आकर अंतःकरण की ओत-प्रोत श्रद्धा से ध्वज को प्रणाम कर केवल एक पुष्प अर्पण किया तो भी काफी है। इस प्रकार के भाव से दिया हुआ एक पैसा भी धनी व्यक्ति द्वारा अर्पित किए गए सहस्रों रुपयों से अधिक मूल्य का है।

11-दक्षिणा को भीख न समझें

यदि कोई यह कहता हो कि कार्य के लिए द्रव्य की आवश्यकता है तो मुझसे हजार रुपए ले जाओ, पर मैं पूजा आदि नहीं करूँगा, तो ऐसी भिक्षा को स्वीकार करना योग्य नहीं। भिक्षा माँगना हमारा धर्म नहीं है।

संघकार्य के आरंभ में जिन्होंने भयंकर कष्ट सहन किए, उनकी दृढ़ भावना, श्रद्धा और तपस्या देखकर, जिस-जिस स्थान पर वे गए, वहाँ के लोगों ने उनके शब्द सुनकर तदनुसार अपना जीवन गढ़ने का प्रयत्न किया। अपना कार्य ऐसे कार्यकर्ताओं के कारण ही बढ़ा है। साल भर में एक बार दक्षिणा देना भर पर्याप्त नहीं है। केवल थोड़ा सा धन देने से सब कुछ कर लिया, 'तेरे पितर सरग गए' इस प्रकार की भावना रखना योग्य नहीं। यह समर्पण भावना की पूर्णता नहीं। वह अंतःकरण की भावना का केवल एक उपलक्षण है। संघकार्य के लिए प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति और बुद्धि पूर्ण रूप से काम में आनी चाहिए। इस राष्ट्र कार्य के लिए परमेश्वर की कृपा से जो कुछ प्राप्त हुआ है, वह सब गुरुचरणों

में अर्पण करना चाहिए। जिस प्रकार रोज खाना, पीना, निद्रा आदि लेते हैं, उसी प्रकार पूजन भी नित्य होना चाहिए।

मनुष्य अपने मन को पसंद आनेवाला उपयोगी काम व उद्योग चौबीसों घंटे करता रहता है। उसमें से निश्चित समय अलग निकालकर राष्ट्र-कार्य के लिए देना चाहिए। उस समय का एक क्षण भी व्यक्तिगत कार्य के लिए उपयोग में नहीं लेना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति विश्वास से अपने पास धन रखता है, तब हम उसे सावधानी से रखते हैं, कुछ भी हो जाए, अपने निजी काम में नहीं लाते। दूसरे के धन का अपने लिए उपयोग करना एक प्रकार का व्यभिचार है। उसी प्रकार राष्ट्र के लिए समर्पित किए हुए प्रतिदिन के समय में से एक क्षण भी दूसरे काम में नहीं लाना चाहिए।

12-ध्वज महिमा

सामान्यतः मनुष्य कोई भी काम करते समय अपने स्वार्थ का विचार करता है। इसी कारण कभी-कभी लोग प्रश्न करते हैं कि इस कार्य से हमारा क्या लाभ होगा? हम विचार करेंगे तो ध्यान में आएगा कि मनुष्य अकेला जिंदा नहीं रह सकता। ऐसा कहा जाता है कि पत्नी, बच्चों के दर्शन किए बिना एकांत में छह सप्ताह रहना पड़े तो मनुष्य पागल हो जाता है, उन्मत्त हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि एकांत से व्यक्ति का जीवन नष्ट हो जाता है।

योग्य रीति से जीवनयापन के लिए उसे समाज की नितांत आवश्यकता होती है, उसका संपूर्ण जीवन समाज पर अवलंबित है। इसलिए समाज की सुस्थिति कायम रखना भी एक प्रकार का स्वार्थ ही है।

संघ में न तो व्यक्तिगत अभिमान के लिए स्थान है और न संस्था के अभिमान के लिए अवसर है। संघ तो केवल अपने अखिल भारतवर्ष का अभिमानी है। फिर अपनी इस दिव्य ध्वजा को छोड़कर अन्य किसी प्रतीक के प्रति संघ किस प्रकार श्रद्धा रख सकता है? हम दूसरे किसी ध्वज का अनादर करना नहीं चाहते, पर हमारी श्रद्धाएँ प्राचीन भारत के इतिहास और परंपरागत भगवे ध्वज को ही समर्पित हैं। यदि हम एक नया भव्य मंदिर बनाकर उसमें एक मूर्ति की स्थापना कर दें, तब भी उसे सोमनाथ, काशी विश्वनाथ एवं रामेश्वर के प्राचीन मन्दिरों की प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती। वह नवीन मंदिर नवीन कला का नमूना बन सकता है, पर पुराने मंदिर की श्रद्धा प्राप्त नहीं कर सकेगा। प्राचीन मन्दिर कैसा भी टूटा-फूटा क्यों न हो, उसमें आधुनिक कलापूर्ण कृति का कितना भी अभाव क्यों न हो, फिर भी उसमें जाकर अत्यंत श्रद्धासहित सभी नतमस्तक होते हैं, क्योंकि उसके पीछे अनेकानेक पीढ़ियों की तपस्या होती है, आत्मसाक्षात्कार, पावित्र्य और आंतरिक शांति देने का सामर्थ्य होता है।

काशी में विश्वनाथ जी के मंदिर में कोई विशेष शोभा नहीं, सौंदर्य नहीं, कला भी नहीं है। वह तो छोटी-सो गली में स्थित एक मामूली मंदिर है। परंतु भारतवर्ष के कोने-कोने से हिंदू उसके दर्शन के लिए जीवन में कम से कम एक बार जाने की इच्छा रखता है।

परिस्थिति और आक्रमणों ने उसे अनेक बार नष्ट व भ्रष्ट किया, परंतु उसके कण-कण में सहस्रावधि वर्षों की दिव्य तपस्या, त्याग, पराक्रम और आत्मसमर्पण गुंफित हैं।

यदि इस ध्वज को हम भूल गए और किसी नए श्रद्धा-केंद्र के निर्माण के पीछे पड़े तो नया ध्वज उस आदर्श-पूर्ति न कर सकेगा। गत हजारों वर्षों से हमारे पूर्वजों ने जिस श्रद्धा से इस ध्वज को अपना कर इस का पूजन किया, अपने अगणित बलिदानों से इस ध्वज को असाधारण गौरव तथा पवित्रता का भाजन बनाया, उसी असीम श्रद्धा से उसका पूजन करें और गौरव बढ़ाएँ। इसको भूलना, अपने इतिहास को भूलना है, आत्मविस्मृति का पाप करना है।

13-विनाश नहीं, पूर्ति

जीसस क्राइस्ट ने महान आत्माओं के संबंध में कहा है कि 'वे पूर्ति के लिए अवतार लेती हैं, विनाश के लिए नहीं।' शिवाजी के जीवन में मिलनेवाला पूर्ति-कार्य का एक उदाहरण यही है कि उन्होंने स्वराज्य स्थापना के बाद अहंकारवश कोई नया ध्वज निर्माण नहीं किया। इस सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक परंपरा के उत्तराधिकारी इस भगवे ध्वज को ही शिवाजी ने अपने पराक्रम द्वारा पुनः गौरव के साथ लहराया, क्योंकि शिवाजी पूर्ति करने आए थे। परंपरागत आदर्शों और आकांक्षाओं की पूर्ति

ही उनका जीवन कार्य था। वही सच्चा उद्धारकर्ता होता है जो पूर्ति करता है। वह परंपरा तथा श्रद्धा-केंद्रों को नष्ट-भ्रष्ट नहीं करता, पुष्ट करता है।

अपनी परंपरा के मूर्त स्वरूप को आदरणीय वस्तु के रूप में समाज के सामने रखता है।

संघ कोई संस्था नहीं, अपितु अपने राष्ट्र का एक छोटा—सा प्रतीक है। भविष्य में संघ स्वयं राष्ट्र बननेवाला है और यही ध्वज श्रद्धा—केंद्र के नाते राष्ट्र के हृदय में अचल स्थान प्राप्त करनेवाला है। संघ कोई संस्था न होने से उसे अलग से अपना नया राष्ट्रध्वज लहराने की आवश्यकता कभी प्रतीत नहीं हुई और न होगी।

14-आत्मनिष्ठा के विविध रूप

आज समाज में पराकाष्ठा की आत्मनिष्ठा फैली हुई है। कुछ लोगों की आत्मनिष्ठा द्रव्य इत्यादि का लाभ कैसे होगा के स्थूल और निकृष्ट रूप में व्यक्त होती है, तो कुछ मान—सम्मान की अपेक्षा के रूप में प्रकट करते हैं।

आत्मनिष्ठा का तीसरा रूप यह होता है कि जो मैं कह रहा हूँ, वही सही है। लोग यदि उसके अनुसार नहीं चलते तो मैं राष्ट्रीय उत्थान के किसी भी कार्य में सहयोग नहीं करूँगा। आत्मनिष्ठा के भाव उत्तरोत्तर अधिकाधिक सूक्ष्म होते जाते हैं। फिर श्रद्धा कहाँ प्रारंभ होती है, यह कह पाना कठिन हो जाता है। इस दृष्टि से देखें तो यह कहना पड़ेगा कि आज अपने समाज में कोई भी श्रद्धा—केंद्र नहीं है।

एकमात्र चिंता का विषय मनुष्य का पेट रह गया है, परंतु पेट की चिंता दूर होने के बाद भी मनुष्य का मनुष्यत्व जागृत होता ही है, ऐसा अनुभव में नहीं आता। उसकी संभावना भी नहीं हो सकती। अनुभव तो इसके विपरीत है। जिन्होंने बड़े—बड़ कार्य किए, उनके पेट की व्यवस्था बहुत अच्छी नहीं थी। संत तुकाराम कहते हैं कि 'बरे झाले देवा बाईल कर्कशा।

ना तरी दुर्दशा झाली होती।' तात्पर्य यही कि बड़े लोग अपने पेटके बारे में सभी प्रकार की उपेक्षा के लिए सिद्ध थे।

15-मनुष्य का जीवन विकारक्षम

मैं एक उदाहरण बताता हूँ। हमार देश में एक बहुत अच्छे देशभक्त थे। उनकी पत्नी का देहांत होने के बाद वे देश कार्य में व्यस्त रहने लगे।

अपन लड़के-बच्चों की देखभाल करने के लिए रिश्ते की एक विधवा स्त्री को लाए और घर की सारी देखभाल उसको सौंप दी। सत्प्रवृत्त होने के कारण वे कुछ धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन भी करते थे। इस प्रकार व्यवहार करते हुए उनके मन में ऐसा भाव आया कि राष्ट्रपुरुष व राष्ट्र का पथप्रदर्शक इस नाते से उच्च स्थान प्राप्त श्री समर्थ रामदास के दिव्य ग्रंथ 'दासबोध' का, जिसमें उनका संपूर्ण व्यक्तित्व प्रकट हुआ है, यदि एक व्रत

के रूप में अनुष्ठानपूर्वक अध्ययन करूँ, तो उससे देश कार्य के लिए पर्याप्त शक्ति प्राप्त होगी। ऐसा सोचकर उन्होंने अध्ययन किया। एक अंत्यत पवित्र स्थान में पूरे 12 वर्ष तक अध्ययन किया। हृदय में संतोष का एक भाव लेकर अपने स्थान को लौटे। उनके लड़के-बच्चे किसी तरह से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। देखभाल करनेवाली स्त्री कितनी देखभाल कर

सकती थी। कोई उसका कहना मानते नहीं थे। इसलिए उस व्यक्ति ने अपने घर-बार की तरफ ध्यान देना प्रारंभ किया। बच्चों की देखभाल करनेवाली स्त्री उनकी माता के समान होती है, याने अपनी पत्नी के रूप में होती है, ऐसा युक्तिवाद करके उन्होंने उससे विवाह कर लिया। 12 वर्ष तक समर्थ रामदास के वचन 'शुकासारिखे पूर्ण वैराग्य ज्याचे' का पाठ करते हुए एक विधवा

स्त्री से विवाह कर अपने बारह वर्ष के तप व व्रत का उद्यापन कर डाला।

अपने गुरु का सम्मान रखें, किंतु संयम से अपने गुरु का सम्मान, उसकी पूजा करनी चाहिए। अपने शास्त्रकारों ने कहा है कि ईश्वर को भक्ति करते समय निःसंकोच होकर, लाज आदि

छोड़कर भरी सड़क पर उसका स्मरण नाचते—गाते करना चाहिए। जहाँ संकोच, लज्जा इत्यादि के भाव रहते हैं, वहाँ पर ईश्वर की भक्ति, ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हो सकता। समस्त ससार के सामने खड़े होकर हम यह गर्जना करें कि हमारा आदर्श क्या है। इसकी भक्ति, पूजा और इसका मान कभी कम न होगा। फिर कोई किसी प्रकार का आक्षेप नहीं करेगा। कर्तव्य और संयम की जानकारी हो इस दृष्टि से एक छोटा—सा उदाहरण बताता हूँ।

एक व्यक्ति जा रहा था। उससे किसी ने पूछा, 'कहाँ जा रहे हो?' उसने उत्तर दिया 'मैं अपने गुरु के यहाँ जा रहा हूँ।' यह पूछने पर कि तुम्हारा गुरु कौन हैं। उसने गुरु का नाम बता दिया। लोगों ने कहा 'वह तो पागल है। उसको क्या गुरु मानते हो?' गुरु के प्रति अटल श्रद्धा होने पर भी लोगो के अपशब्द सुनकर वह शांत बना रहा, क्योंकि उसने सुन रखा था कि किसी को दुःख नहीं देना चाहिए, परंतु उसको हृदय में बहुत कष्ट हुआ। गुरु के पास जाकर उसने, जो कुछ हुआ था, उसका पूरा हाल खिन्न मन से बताया। उसके गुरु ने कहा, 'तू कैसा शिष्य है जो अपने गुरु की निंदा सुन सकता है? ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहिए। अपनी भीरुता को छिपाने के लिए तुमने नमता का यह स्वाँग किया। तेरे जैसे शिष्य को धिक्कार है।'।

यह उदाहरण सुनकर आपके मन में यह भाव आ सकता है कि

हाथ में डंडा लेकर खड़े हो जाना चाहिए, परंतु इस प्रकार का व्यवहार करना भी योग्य नहीं है। फिर आप पूछेंगे कि तब क्या करना चाहिए?

इसका भी एक उदाहरण बताता हूँ। एक शिष्य था। वह नौका में बैठकर दूसरे किनारे पर रहनेवाले अपने गुरु के पास जा रहा था। जाते-जाते नौका में बैठे व्यक्तियों के साथ इधर-उधर की बातें होने लगीं। लोगों ने जब उसके गुरु को अपवचन कहे, तो शीघ्र कोपी होने के कारण वह खड़ा हुआ और बाहु उठाकर बोला कि 'अब एक भी शब्द कहा तो सबको जलसमाधि दे दूँगा।' प्रबल मनुष्य देखकर निंदकों की बोलती बंद हो गई। उसका भीमकाय शरीर और क्रोध देखकर सब गिड़गिड़ाकर क्षमा माँगने लगे। वह उसी आवेश में गुरु के घर गया। उसकी लाल आँखें देखकर गुरु ने पूछा- 'बहुत क्रोधित दिख रहे हो, क्या बात है?' उसी क्रोध में उसने कहा- 'लोग आपके बारे में गलत-सलत बोल रहे थे। मेरी तो इच्छा थी कि सबको जलसमाधि देकर समाप्त कर दूँ।' इस पर गुरु ने कहा- 'अरे भाई! लोग अज्ञानी होते हैं। हमको संयम नहीं छोड़ना चाहिए।' ये दोनों किस्से हमारे सामने हैं। इससे हमें यही सीखना है कि गुरु का बराबर आदर करना जानें। यदि कोई अनादर करे तो हृदय के अंदर ऐसी प्रदीप्त अग्नि भड़क उठे कि अनादर करनेवाले को केवल नेत्र दृष्टिपात मात्र से भस्म कर दें। परंतु समय और अपनी प्रगति को देखकर, उस अग्नि को संयमित भी कर सकें। मन में यह विचार रहना चाहिए कि गुरु की मानमर्यादा की रक्षा करूँगा। इस प्रकार निश्चय करने पर कार्य की दृष्टि से बड़ा लाभ होता है।

16-संघनिष्ठा ही जीवन का ध्येय हो

किसी व्यक्ति को आदर्श रखकर बाद में उसका पतन देखकर मैं संघकार्य नहीं करूँगा- ऐसी विकृति हमारे हृदय को कभी स्पर्श नहीं करनी चाहिए। हमारा निश्चय रहे कि सब के सब भी यदि अपने मार्ग से गिर जाएँ तब भी इस मार्ग पर चलता ही रहूँगा। ऐसा दृढ़ निश्चय पूर्ण शक्ति के साथ अपने अंतःकरण में जागृत रखें। फिर से एक वर्ष बाद, इसके सम्मुख उपस्थित होकर आत्मनिवेदन करें।

ऐसा होते हुए भी जीवन में इस प्रकार की घटनाएँ या कृतियाँ देखने को मिलती हैं, अनुभव में आती हैं जिसके कारण व्यक्ति विशेष के संबंध में सारी श्रद्धा अंतःकरण से निकल जाए। ऐसे समय उस व्यक्ति के बारे में अंतःकरण में क्रोध, शोक इत्यादि भावनाएँ खड़ी हो जाएँगी। और ये सब भावनाएँ उत्पन्न होने के कारण काय करने की अपनी तेजस्विता पर बुरा परिणाम होता है। तब अप्रसन्न हृदय से काम करना कठिन हो जाता है।

पातंजल सूत्र में मन को प्रसन्न रखने के चार प्रकार बताए हैं। एक तो सुख, वैभव व ऐश्वर्य से भरा हुआ। दूसरा उसके विपरीत याने दुःख से भरा हुआ। तीसरा सद्गुणों से भरा हुआ और चौथा दुर्गुणों से भरा हुआ।

इन चार रूपों में सब प्रकार के मानव-समाज को अपनी आँखों के सामने रखना कार्य की दृष्टि से आवश्यक है। हम अपने मन को इस प्रकार की शिक्षा दें कि यदि कोई व्यक्ति सुखसंपन्न, वैभवसंपन्न दिखाई दें तो उसे देखकर प्रसन्नता होनी चाहिए। उसी प्रकार यदि कोई दुःखी दिखाई दे तो अपनी यह धारणा बने कि पूर्ण शक्ति लगाकर उसके दुःख को दूर करूँगा।

उसका दुःख दूर करना मेरा कर्तव्य है। इस उपाय से हम ईर्ष्या, स्पर्धा, द्वेष इत्यादि भावनाओं को अंतःकरण से निकाल सकते हैं।

17-श्री गुरु ग्रंथसाहब

व्यक्ति स्थूलनशील होने से, व्यक्ति को गुरु मानने में धोखा है, यह विचार हम हिंदू-समाज के सिख पंथ में भी पाते हैं। क्रूर एवं आततायी आक्रमण से संरक्षण के लिए, क्षात्रवृत्ति का अंगीकार करनेवाले शस्त्रधारी और पराक्रमी, एक से बढ़कर एक श्रद्धास्पद गुरु, हिंदू-समाज में हुए।

उनमें दसवें गुरु गुरुगोविंदसिंह जी थे। उन्होंने गुरु परंपरा पर विराम लगाया। क्योंकि धर्मभक्त, देशभक्त, आत्मसमर्पण हेतु सिद्ध लोग हर बार गुरु पद पर आएँगे ही यह कहना कठिन है। इसी विचार से उन्होंने आदेश दिया कि इसके बाद ग्रंथ साहब का ही गुरु माना जाए। उसमें दिए गए ज्ञान का श्रेष्ठ संकलन, उसकी स्फूर्तिप्रदता, तेजस्विता, क्षात्रधर्म, ब्रह्मतेज इन सभी का अक्षय आदर्श दृष्टि के सम्मुख हो। किसी शाश्वत मार्गदर्शन के लिए किसी व्यक्ति पर अवलंबित न रहें। यह हिंदू-परंपरा का ही विचार है। संघ में भी यह विचार किया गया। पिछले वर्ष क्या कार्य किया- इसका विचार कर, नवीन वर्ष की प्रगति का निश्चय करने का आज का दिन है। ऐसे पवित्र दिन पर यही निश्चय हो, जीवन में इष्ट परिवर्तन लाएँगे। समर्पण की भावना से उसे भर देंगे। उसे तेजस्वी बना देंगे। मन की सारी अनिश्चितता, भ्रम का अंत करेंगे। एक विचार, एक निश्चय, एक पद्धति पर खड़ा संघकार्य ही जीवन का लक्ष्य मानेंगे। परिस्थिति की अपने से यही माँग है। वह पूर्ण की गई तो सारी अमंगलता नष्ट कर, राष्ट्र की पवित्र शक्ति जागृत करने का श्रेय हमें मिलेगा।

18-संघ कार्यपद्धति की विशेषता

संघ व्यक्तिपूजक होता तो सन् 1940 में आद्य सरसंघचालक डा हेडगेवार का देहांत हुआ, तभी संघ की इतिश्री हो जाती। पर ऐसा नहीं हुआ, यह हम आज प्रत्यक्ष देख रहे हैं। संघकार्य का यह वैशिष्ट्य है कि संघ में कोई भी ऐसा नहीं कहता कि 'मेरे बगैर संघ नहीं चलता, चलेगा नहीं।' डाक्टर जी के बीमार रहते अनेक लोगों के सम्मुख प्रश्न उठा कि डाक्टर जी के बाद संघ का क्या होगा? कुछ बड़े प्रतिष्ठित लोग आए। उनसे कहने लगे 'ट्रस्ट बनाइए'। एकाध कमेटी बनाइए, वरना सब बंद हो जाएगा।' पर उन्होंने इन बातों पर ध्यान नहीं दिया। वास्तव में देखें तो डाक्टर जी के बाद संघकार्य की रचना, निर्माण, वृद्धि सब स्वयंसेवकों ने ही की है। क्रांतदर्शी चला गया, पर व्यक्ति पूजा नहीं, इसीलिए संघ टिका हुआ है, जीवंत है, वर्धिष्णु है।

19-राष्ट्र के मूल स्रोत को पहचानें

एक बार डाक्टर साहब ने बातचीत के प्रसंग में मुझे पूछा- 'किसी को गुरु वगैरह तो नहीं किया है? किसी स मंत्र अथवा दीक्षा आदि तो नहीं ली है?' 'नहीं' कहने पर वे बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे 'बहुत अच्छा हुआ।' किसी को गुरु बनाना, मंत्र-दीक्षा आदि लेना उनको पसंद नहीं था। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनको अपनी प्राचीन परंपरा का विस्मरण हुआ था अथवा अपनी परंपरा का ज्ञान नहीं था। वे कहते थे कि 'मंत्र लेने से मनुष्य के स्वतंत्र कर्तृत्व पर प्रतिबंध लगता है। इसलिए किसी को गुरु नहीं बनाना चाहिए।' इसे सत्य मानें या ना मानें, पर यह सत्य है।

इसी कारण लोग अपने मूल स्रोत का विचार छोड़कर व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर अपने-अपने पंथ चलाने लगे और उसमें जीवन का साफल्य मानकर राष्ट्र को भूल गए।